वनपर्व कथासार

वनपर्व में २२ उपपर्व तथा ११९६८ श्लोक हैं।

१. अरण्यपर्व

वनपर्व के इस उपपर्व में १० अध्याय तथा ३८२ श्लोक हैं। पाण्डवों के बारह साल के वनवास के बारे में जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायन ने उसे सुनाया। पाण्डवों के वनवास जाते समय पुरवासी भी उनके साथ जाने की इच्छा प्रकट कीं। युधिष्ठिर ने अपने को धन्य बताकर उन्हें वापस भेज दिया। पुरवासियों के लौट जाने पर पाण्डवगण गङ्गा के किनारे प्रमाण नामक महान् वट वृक्ष के समीप रात बिताया। कुछ ब्राह्मण भी उनके साथ थे। युधिष्ठिर के मना करने पर भी वे उनके साथ रहने का, तथा स्वयं ही अपने लिए अन्न आदि की व्यवस्था करने का निर्णय प्रकट किया। अपने लिए ब्राह्मणों के लिए कष्ट भोगना नहीं चाहनेवाले युधिष्ठिर चिन्ताक्रान्त हो गये। तब सांख्य और कर्मयोग में कुशल ब्राह्मण शौनक ने उन्हें मानसिक और शारीरिक दुःखों की शान्ति का उपाय बताया और उपदेश दिया कि हे कौन्तेय! सिद्ध पुरुष अपने तप के प्रभाव से अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये आप तपस्या का आश्रय लेकर अपने मनोरथ की पूर्ति कीजिए।

शौनक के ऐसा कहने पर धर्मराज ने अपने पुरोहित धौम्य के पास जाकर उससे पूछा कि विप्रवर! ये ब्राह्मण मेरे साथ वन में रहना चाहते हैं। लेकिन इस समय मुझे इन्हें अन्न देने की शक्ति नहीं है। आप बताइए कि मुझे इस अवस्था में क्या करना चाहिए। धौम्य ने कहा कि सभी जीवों के प्राणों की रक्षा करनेवाला अन्न सूर्य भगवान् ही हैं। अतः तुम उनका शरण ले लो। उनके उपदेश के अनुसार सूर्य की आराधना करके सूर्य भगवान के अनुग्रह से अक्षयपात्र प्राप्त किया। ब्राह्मण तथा पुरोहित धौम्य के साथ पाण्डव भी काम्यक वन चले गये।

पाण्डवों के वन चले जाने के पश्चात् धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलाकर अग्रिम निर्देश करने के लिए पूछा। तब विदुर ने उसे धर्ममार्ग पर चलने का उपदेश किया। लेकिन धृतराष्ट्र ने उसका व्यवहार अपने पुत्रों के लिए अहित समझ और कहा कि हे विदुर! तुम्हारे आज के व्यवहार से ही मैं समझ गया कि तुम मेरे हितैषी नहीं हो। तुम मुझे अहित सलाह दे रहे हो। तुम्हारी इच्छा के अनुसार चले जाओ या रहो। ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्र महल के भीतर चले गये। कुल का नाश अवश्यंभावी कहकर विदुर भी पाण्डवों के पास चला गया। उसने अपने साथ धृतराष्ट्र के व्यवहार को बताया और धर्मराज के लिए कुछ उपदेश किया। उसने विदुर को धर्म पालन करने का आश्वासन दिया। विदुर के चले जाने पर धृतराष्ट्र को बडा पश्चात्ताप हुआ और संजय से उसे ले आने को कहा। महाराज के आदेश को सुनकर विदुर युधिष्ठिर की अनुमति लेकर हस्तिनापुर गये। धृतराष्ट्र ने अप्रिय व्यवहार के लिए उससे क्षमा मांगी। वे दोनों भाई एक दूसरे से अनुनय-

विनय करके अत्यन्त प्रसन्न हुए।

विदुर के फिर लौट आने से उसकीखिन्न हुआ। वह, दुःशासन, शकुनि और कर्ण आपस में बातचीत करके अलग अलग रथों पर बैठकर पाण्डवों का वध करने का निश्चय कर एक साथ नगर से बाहर निकले। व्यासमहर्षि ने दिव्यदृष्टि से सब कुछ देखकर सहसा वहाँ आकर
सबको रोका और धृतराष्ट्र के पास आया। उसने धृतराष्ट्र से दुर्योधन के अन्यायपूर्ण व्यवहार को रोकने का अनुरोध किया। धृतराष्ट्र ने कहा कि भगवन्! द्यूतक्रीडा मुझे भी पसन्द नहीं थी। लेकिन मोहवश सब को जुए में लगा दिया। मैं जानता हूँ कि मेरा पुत्र दुर्योधन अविवेकी है। परन्तु पुत्र स्नेह के कारण में उसका त्याग नहीं कर सकता। उनकी बातें सुनकर व्यासमहर्षि ने कहा कि यह सच है कि पुत्र से बढकर दूसरी वस्तु संसार में कोई नहीं है। लेकिन जो पुत्र दयनीय दशा में पडे हों, उन पर अधिक कृपा करनी चाहिए। इस समय पाण्डुपुत्र अत्यन्त दुःख भोग रहे हैं। हे राजन्! यदि तुम समस्त कौरव को जीता देखना चाहते हो तो, तुम्हारा पुत्र दुर्योधन पाण्डवों के साथ शान्तिपूर्वक रहे। धृतराष्ट्र के अनुरोध पर व्यास ने कहा कि पाण्डवों से मिलकर महर्षि मैत्रेय हम से मिलने के लिए यहाँ आ रहे हैं। वे इस कुल की शान्ति के लिए दुर्योधन को यथायोग्य शिक्षा देंगे। यदि तुम्हारा पुत्र उनकी अवहेलना करगा तो कुपित होकर उसे शाप देंगे। ऐसा कहकर व्यासजी चले गये और मैत्रेयजी वहाँ पधारे। स्वागत सत्कार के बाद मैत्रेय ने दुर्योधन को हितोपदेश किया। उस समय दुर्योधन ने अपनी जाँघ को हाथ से मारा और पैर से पृथ्वी को कुरेदने लगा। महर्षि के वचनों में वह निरासक्त था। उसे देखकर महर्षि क्रुद्ध हुए और शाप दिया कि तेरे द्रोह के कारण बडा भारी युद्ध होनेवाला है। उसमें भीम अपनी गदा की चोट से तेरी जाँघ तोड डालेगा। जब धृतराष्ट्र ने महर्षि का अनुनय किया तब उसने कहा कि शान्ति का अवलम्बन करें तो शाप का प्रभाव नहीं होगा नहीं तो शाप को अवश्य भोगना पडेगा। ऐसा कहकर मैत्रेय वहाँ से चले गये। मैत्रेय के मुख से किर्मीरवध का समाचार सुनकर दुर्योधन उद्विग्न होकर बाहर निकल गया।

२. किर्मीरवधपर्व

इसमें एक अध्याय तथा ७५ श्लोक हैं। धृतराष्ट्र के पूछने पर विदुर ने किर्मीरवध का वृत्तान्त सुनाया। पाण्डव द्यूत में पराजित होकर वनवास के लिए जाते समय काम्यकवन पहुँचे उस समय किर्मीर नाम क नरभक्षी राक्षस उनके मार्ग को अवरोध किया। भीमसेन ने उसका वध किया। यह वृत्तान्त सुनकर धृतराष्ट्र भारी चिन्ता में डूब गये।

३. अर्जुनाभिगमनपर्व

इस उपपर्व में २६ अध्याय तथा १०५२ श्लोक हैं। पाण्डवों के वनवास वृत्तान्त को सुनकर अत्यन्त दुःखित पाञ्चाल राजकुमारकेकयराजकुमार तथा

वृष्णि, अन्धकवंश के वीर युधिष्ठिर से मिलने के लिए वन में गये। वे सब श्रीकृष्ण को आगे करके उनसे मिले। श्रीकृष्ण ने राजाओं से कहा कि युद्ध में दुर्योधन आदि को परास्त करके युधिष्ठिर का पुनः राज्याभिषिक्त करना है। जो व्यक्ति दूसरे को धोखा देकर सुख भोगता रहता है उसे मार डालना चाहिए। यह सनातन धर्म है। कुन्तीपुत्रों के अपमान से कुपित श्रीकृष्ण को अर्जुन ने शान्त किया तथा उनके पूर्व कृत्यों की स्तुति की। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि हे पार्थ! तुम नर हो, मैं नारायण हूँ। इस समय नर नारायण ऋषि ही इस लोक में आये हैं। हम दोनों अभिन्न हैं। दोनों का भेद जाना नहीं जा सकता। द्रौपदी श्रीकृष्ण से कौरव कृत अपमान और दुःख का वर्णन करके बोली कि हे! प्रभो! एक तो आप मेरे संबन्धी हैं। दूसरी मैं गौरवशालिनी हूँ। तीसरी आपकी सखी हूँ। चौथा कारण तो आप मेरी रक्षा करने में समर्थ हैं। यह सुनकर श्रीकृष्ण ने द्रौपदी को आश्वासन दिया। उसने युधिष्ठिर से कहा कि हे राजन्! द्यूतक्रीडा के समय मैं द्वारका में या निकट होता तो कौरवों के बिना बुलाये भी मैं द्यूतसभा में पहुँचकर उसके अनेक दोष दिखाकर उसे रोकने की चेष्टा करता। द्वारका आने पर ही मैंने सात्यकि से समाचार पाया और तुरन्त आप से मिलने चला आया। श्रीकृष्ण उस समय द्वारका में अनुपस्थित होने का कारण शाल्ववधोपाख्यान बताया। युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर श्रीकृष्ण, धृष्टद्युम्न तथा अन्य राजा अपने अपने नगरों के लिए प्रस्थान हुए।

पाण्डव काम्यकवन से द्वैतवन चले गये। एक दिन महर्षि मार्कण्डेय अतिथि के रूप में पाण्डवों के आश्रम में आये। पाण्डवों को धर्म का उपदेश करके उनसे बिदा ले उत्तरदिशा की ओर चले गये। एक दिन पाण्डव सायंकाल में द्रौपदी के साथ बैठकर शोक में मग्न हो आपस में बातचीत करने लगे। उस समय द्रौपदी ने धर्मराज से कहा कि हे राजन्! दुरात्मा दुर्योधन हमें दुःख में डालकर मित्रों के साथ आनन्दित हो रहा है। मैं द्रुपद के कुल में उत्पन्न हूँ। पाण्डु की पुत्रवधू हूँ। धृष्टद्युम्न की बहिन तथा वीर पाण्डवों की पत्नी हूँ। मुझे इस प्रकार वन में कष्ट उठाती देखकर शत्रुओं के प्रति क्षमा दिखाना आपको उचित नहीं है। समय आने पर अपने प्रभाव को जो क्षत्रिय नहीं दिखाता उसका सब प्राणी तिरस्कार करते हैं। इसलिए हे महाराज! कौरवों के प्रति अपने तेज को दिखाने का अवसर आया है। यह मेरा अभिप्राय है। द्रौपदी की बातें सुनकर युधिष्ठिर ने क्रोध की निन्दा और क्षमाभाव की प्रशंसा की। द्रौपदी ने युधिष्ठिर की बातों का आक्षेप किया। उसने सयुक्तिक द्रौपदी के आक्षेप का समाधान किया। द्रौपदी ने कर्तव्य निभाने के लिए फिर युधिष्ठिर को उपदेश किया। भीमसेन भी द्रौपदी की बातों का समर्थन किया और युधिष्ठिर को युद्ध के लिए उत्साहित किया। धर्मराज ने उसे समझाने का प्रयत्न किया। इस प्रकार दोनों में बातचीत के समय व्यास महर्षि वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने धर्मराज से कहा कि मैं तुम्हें प्रतिस्मृति नामक विद्या का उपदेश देता हूँ। जिसे तुम से पाकर अर्जुन अपने सभी

कार्यों की सिद्धि करेंगे। दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के लिए अर्जुन इन्द्र, रुद्र आदि के पास जायें। एसा कहकर व्यास महर्षि धर्मराज को उस विद्या का उपदेश करके वहाँ से अन्तर्धान हो गये। व्यासजी की आज्ञा से पाण्डव द्वैतवन से फिर काम्यकवन चले गये।

कुछ समय के बाद युधिष्ठिर ने अर्जुन से एकान्त में वार्तालाप किया और दिव्यास्त्र पाने के लिए इन्द्र के दर्शन करने की सलाह दी। भाई से आज्ञा लेकर अर्जुन ने इन्द्रकीलपर्वत जाकर वहाँ इन्द्र का दर्शन किया। उसने कहा कि जब तुम्हें शिव का दर्शन होगा तब मैं तुम्हें सम्पूर्ण दिव्यास्त्र प्रदान करूँगा। ऐसा कहकर इन्द्र अदृश्य हो गये।

४. कैरातपर्व

इसमें चार अध्याय तथा १९६ श्लोक हैं। महादेव के दर्शन के लिए अर्जुन ने हिमालय के एक निर्जन वन में उग्र तपस्या की। उसकी उग्र तपस्या के बारे में महर्षियों ने महादेव को अवगत कराया। शङ्कर ने अर्जुन के संकल्प को पूर्ण करने का आश्वासन दिया। उसके बाद
शंकर किरातवेष धारण करके उस वन में पहुँचे जहाँ अर्जुन तपस्या कर रहा था। उनके साथ उमा और भूतगण भी थे, वहाँ मूक नामक असुर सुअर का रूप धारण करके अर्जुन को मार डालने का उपाय सोच रहा था। उसे लक्ष्य बनाकर शंकर और अर्जुन दोनों ने उस पर बाण को छोडकर उसे मार दिया। इस विषय में दोनों में युद्ध हुआ। अर्जुन ने किरात पर सैकडों मर्मभेदी बाणों का प्रयोग किया। लेकिन भगवान शङ्कर ने सब को आत्मसात कर लिया फिर उनके बीच बाहुयुद्ध चला। आखिर अर्जुन किरात को शङ्कर जानकर उनके चरणों में गिर पडा और उन्हें प्रसन्न किया। भगवान शंकर प्रसन्न हुए और उसे गाण्डीव धनुष देकर उमा के साथ स्वस्थान चले गये। अभीष्ट प्रयोजन सिद्ध होने से अर्जुन बहुत खुश हुआ। कुबेर आदि दिक्पालक वहाँ पहुँचे और उसे दण्डास्त्र, वरुणपाश, अन्तर्धान नामक दिव्यास्त्रों को प्रदान किया। इन्द्र इन्द्राणी के साथ ऐरावत पर बैठकर उस पर्वत के शिखर पर पहुँचे। उन्होंने दिव्यास्त्र प्रदान करने के लिए उसे स्वर्गलोक चलने को कहा।

५. इन्द्रलोकाभिगमनपर्व

इसमें दस अध्याय तथा २९७ श्लोक हैं। दिक्पालकों के चले जाने के बाद अर्जुन इन्द्र के रथ का स्मरण किया। तभी रथसारथि मातलि के साथ दिव्य रथ वहाँ आ गया। अर्जुन मातलि के साथ अमरावती पहुँचा और पिता देवेन्द्र को प्रत्यक्ष देखा। अर्जुन अपने पिता के घर में रहकर अस्त्रों की शिक्षा ग्रहण की। इन्द्र के विशेष अनुरोध से पाँच वर्षों तक वहाँ सुखपूर्वक ठहरा। अस्त्रशिक्षा में निपुण अर्जुन पिता के आदेश से चित्रसेन से नृत्य और गीत की शिक्षा प्राप्त कर ली।

एक बार इन्द्र अर्जुन को उर्वशी से आसक्त जानकर चित्रसेन को बुलाया और उससे कहा कि अर्जुन को स्त्रीसङ्गविशारद बनाने के लिए उर्वशी को उसके पास भेज देना। उर्वशी ने चित्रसेन के मुख से अर्जुन के गुणगणों को सुन लिया और उस पर आकृष्ट होकर इन्द्र की आज्ञा के अनुसार अर्जुन के पास गयी। उसने अपने मन की इच्छा अवगत कराया। तब अर्जुन ने कहा कि हे वरवर्णिनि! मेरी दृष्टि में तुम मेरी माता के समान पूजनीय हो और तुम्हें पुत्र के समान मानकर मेरी रक्षा करनी चाहिए। उसके वचनों को सुनकर क्रुद्ध उर्वशी उसे शाप देते हुए कहा कि तुम्हें स्त्रियों के बीच में सम्मानरहित होकर नर्तक बनकर रहना पडेगा। तुम नपुंसक कहलाओगे। और तुम्हारा व्यवहार नपुँसक जैसा होगा। शापवृत्तान्त जानकर इन्द्र अपने पुत्र अर्जुन को बुलाया और कहा कि हे पुत्र! यह शाप तुम्हारे अभीष्ट अर्थ का साधक होगा। अज्ञातवास में नर्तकवेष और नपुंसकभाव से एक वर्ष तक यथेच्छ रहकर फिर अपना पुरुषत्व प्राप्त कर लोगे।

एक समय महर्षि लोमश इधर उधर घूमते इन्द्र से मिलने स्वर्गलोक पहुँचे। वहाँ इन्द्र के आधे सिंहासन पर बैठा हुआ अर्जुन को देखकर उसके मन में शङ्का हुई। यह जानकर इन्द्र ने कहा कि हे ब्रह्मर्षि! यह कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न मेरा पुत्र है। नरनारायण नाम से प्रसिद्ध जो पुरातन मुनीश्वर हैं वे ही देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए श्रीकृष्ण और अर्जुन के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। यहाँ के निवात कवच नामक दानवों को मारकर अर्जुन मनुष्यलोक लौट जायगा। इन्द्र ने महर्षि से भूलोक में काम्यकवन में युधिष्ठिर से मिलने का और उसे अपना सन्देश सुनाने का अनुरोध किया। उसने धर्मराज को सन्देश भेजा कि अर्जुन अस्त्रविद्या सीखकर शीघ्र ही लौट आयेंगे। लोमश महर्षि ने सन्देश लेकर काम्यकवन में धर्मराज से मिले।

महाराज धृतराष्ट्र व्यास के मुख से अर्जुन का इन्द्रलोकगमन समाचार सुनकर व्यथित हुआ और अपने पुत्रों के बारे में चिन्ता प्रकट करते सञ्जय से कहा कि हे सूत! मेरे सभी पुत्र दुर्व्यवहार से मृत्यु के वश हो गये हैं। अस्त्रविद्यासम्पन्न अर्जुन को कौन जीत सकता है? उसकी बातें सुनकर सञ्जय ने कहा कि राजन्! आपने दुर्योधन के विषय में जो कुछ कही हैं वे सब कुछ यथार्थ हैं। अर्जुन ने अपनी तपस्या तथा धनुर्विद्या से परमेश्वर को भी सन्तुष्ट किया। द्रौपदी के पराभव से दुःखित पाण्डव अवश्य युद्ध में आपके पुत्रों का संहार कर डालेंगे। धृतराष्ट्र ने सञ्जय के वचनों का अनुमोदन किया और दुःखित हुआ।

६. नलोपाख्यानपर्व

इसमें कुल २८ अध्याय तथा १०६८ श्लोक हैं। अस्त्रविद्या के लिए अर्जुन के इन्द्रलोक जाने पर दुःख से पीडित पाण्डव द्रौपदी के साथ काम्यकवन में उसकी बातें करने लगे। उस समय भीम ने युधिष्ठिर से कहा कि हम सबका

प्राण अर्जुन आपकी आज्ञा से दिव्यास्त्र पाने के लिए तपस्या करने चला गया। बाहुबलसम्पन्न हम श्रीकृष्ण की सहायता से शत्रुओं को मार सकेंगे। द्यूतक्रीडा के दोष से हम दीन बन गये हैं। इस प्रकार वन में रहना क्षत्रियों का धर्म नहीं है। धर्मज्ञ पुरुषों द्वारा एक दिन रात एक संवत्सर के समान देखा जाता है। वैदिकवचन के अनुसार कृच्छ्रव्रत के अनुष्ठान से एक वर्ष की पूर्ति हो जाती है। आप समझ लीजिए कि तेरहवें दिन के बाद ही तेरह वर्षों का समय बीता गया। इसलिये आप वेदोक्त धर्म के पालन पर दृष्टि रखिये। उसकी बातें सुनकर युधिष्ठिर ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि हे भीम! तुम अर्जुन के साथ दुर्योधन को मार डालोगे। इसमें संदेह नहीं है। लेकिन अभी उसके वध का अवसर नहीं आया है। इस तरह युधिष्ठिर के कहते समय महर्षि बृहदश्व वहाँ आ पहुँचे। पूजा के बाद धर्मराज ने महर्षि से द्यूतवृत्त को बताकर अपने को भाग्यहीन कह दिया। तब बृहदश्व ने धर्मराज से अधिक भाग्यहीन नलमहाराज का चरित्र सुनाया। स्वयंवर में दमयन्ती ने नल को अपने पति के रूप में चुन लिया। इन्द्र के मुख से यह समाचार सुनकर दमयन्ती पर अनुरक्त कलि क्रुद्ध हुआ और समय पाकर वह नल के भीतर प्रविष्ट हुआ। उसके प्रभाव से पुष्कर के साथ द्यूतक्रीडा में राजा नल हारकर दमयन्ती के साथ वन गया। क्षुधातुर उसने वहाँ कुछ पक्षियों को देखा और उन्हें भक्ष्य समझकर उनपर अपने वस्त्र को डाल दिया। लेकिन सब पक्षी उस वस्त्र को लेकर आकाश में उड गये। नग्नावस्था पाकर नल बहुत खिन्न हुआ। सोती दमयन्ती का आधा वस्त्र काटकर अपना शरीर ढँक लिया और उसे छोडकर चला गया। दोनों ने बहुत कष्ट उठायें। यह सब कुछ कलि का प्रभाव था। अन्त में पुष्कर को द्यूत में हराकर अपने राज्य को पुनः पाया। इस तरह बृहदश्व महर्षि ने नलोपाख्यान कहकर युधिष्ठिर को आश्वासन किया तथा द्यूतविद्या और अश्वविद्या का रहस्य बताया।

७. तीर्थयात्रापर्व

इसमें (८० - १५६) ७७ अध्याय तथा २८४५ श्लोक हैं। अस्त्रविद्याप्राप्ति के लिए अर्जुन के काम्यकवन से चले जाने पर द्रौपदी सहित पाण्डव चिन्ताग्रस्त हो गये। एक दिन वहाँ महर्षि नारद उपस्थित हुए। अतिथिसत्कार के बाद युधिष्ठिर ने उन्हें तीर्थयात्रा का फल पूछा। भीष्म, महर्षि पुलस्त्य के मुख से तीर्थयात्रा के बारे में जो कुछ सुना था, उन सबको नारदमहर्षि ने उन्हें बताया। भीष्म के पूछने पर पुलस्त्य ने कहा कि मनुष्यलोक में ब्रह्माजी का त्रिलोकविख्यात पुष्कर नामक तीर्थ है। भाग्यशाली ही उसमें प्रवेश कर पाता है। इसमें तीनों समय दस सहस्र कोटि तीर्थों का निवास होता है। वहाँ बारह रात रहकर तत्पश्चात जम्बूमार्ग नामक तीर्थ को जाना है। इस तरह सब तीर्थों के पुण्यफलों का वर्णन किया।

पश्चात् लोमश महर्षि वहाँ आया और अर्जुन के पाशुपत आदि दिव्यास्त्रों का वर्णन करके युधिष्ठिर को इन्द्र का सन्देश सुनाया। उस सन्देश से खुशी पाण्डव तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थित हुए। नैमिशारण्य गोमती आदि तीर्थ जाकर वहाँ

से प्रयाग तथा गयातीर्थ निकले। गया से अगस्त्याश्रम गये। युधिष्ठिर के पूछने पर लोमश ने अगस्त्य मुनिकृत वातापिनाशवृत्तान्त बताया। फिर वज्रायुध के लिए दधीच महर्षि का अस्थिदान, वृत्रासुरवध अगस्त्यमहर्षि का विन्ध्यपर्वत को बढने से रोकना, आगस्त्य का समुद्रपान, सगरपुत्रों की उत्पत्ति, ऋष्यशृङ्ग वृत्तान्त आदि बताया। तदनन्तर धर्मराज ने पाण्डवों के साथ कौशिक, गङ्गा और वैतरणी नदी की यात्रा की। इसके बादवे महेन्द्र पर्वत गये। युधिष्ठिर के पूछने पर परशुराम के सेवक अकृतव्रण ने परशुराम से किये गये महत्त्वपूर्ण कर्मों को बताया। वहाँ से पाण्डव प्रभासतीर्थ निकले। वहाँ यादव उनसे मिले। पाण्डवलोग लोमशजी के साथ वहाँ से निकलकर तीर्थों में विचरने लगे। तीर्थयात्रा में द्रौपदी थककर मूर्छित होने लगी। धर्मराज की आज्ञा लेकर भीम ने अपने पुत्र घटोत्कच का स्मरण किया। पिता के आदेश पाकर घटोत्कच ने माता द्रौपदी को, दूसरे राक्षस पाण्डवों को भी अपने अपने कन्धे पर बिठाकर ले चले। वे बदरिकावन पहुँचे। द्रौपदी के पूछने पर भीम सौगन्धिक कमल लाने निकला। उस समय रास्ते में वायुनन्दन हनुमान से भेंट हुई। सौगन्धिकवन पहुँचकर भीम ने वहाँ के राक्षसों को पराजय करके सौगन्धिक कमल ले आया। इसके बाद वे अशरीर वाणी के अनुसार बदरी के नाम से विख्यात नर नारायण स्थान को चल गये।

८. जटासुरवधपर्व

इस पर्व में (१५७) एक अध्याय तथा ७३ श्लोक हैं। गन्धमादन पर सब पाण्डव अर्जुन के आने की प्रतीक्षा करते हुए रहने लगे। एक दिन भीमसेन की अनुपस्थिति में जटासुर नामक राक्षस द्रौपदी के साथ पाण्डवों का अपहरण किया। उस समय सहदेव प्रयत्न से राक्षस की पकड से छूट गये और भीमसेन जिस मार्ग में गये उधर ही जाकर उन्हें जोर से पुकारने लगे। भीमसेन ने उससे युद्ध किया और उसे मारा।

९. यक्षयुद्धपर्व

इस पर्व में (१५८ - १६४) सात अध्याय तथा ३८५ श्लोक हैं। जटासुर वध के बाद पाण्डव नरनारायण आश्रम पहुँचकर वहाँ रहने लगे। तीर्थयात्रा करते करते पाण्डवों का चार वर्ष पूरे हो गये। पाँचवें वर्ष में अर्जुन अस्त्रविद्या प्राप्त करके अनेवाला है। सब लोग उसकी प्रतीक्षा में थे। पाण्डवों ने वहाँ के वृषपर्वा के आश्रम में जाकर उनसे मिले। आठवें दिन उनसे अनुमति लेकर पाण्डव उत्तरदिशा की ओर चले। पैदल ही चलते वे लोग चौथे दिन हिमालय पर्वत जा पहुँचे। फिर वे वहाँ के आर्ष्टिषेण के आश्रम गये। महर्षि ने अर्जुन से भेंट होने तक उन्हें वहाँ रहने का अनुरोध किया। वहाँ निवास करते उनका पाँचवाँ वर्ष बीत गया। द्रौपदी के अनुरोध से भीमसेन ने उस पर्वत के शिखर पर जाकर वहाँ यक्ष तथा राक्षसों से युद्ध करके उन्हे वहाँ से भगा दिया और मणिमान नामक

राक्षस को मार दिया।

गन्धमादनपर्वत पर रहते पाण्डव अर्जुन की प्रतीक्षा में उत्कण्ठित थे। अर्जुन इन्द्र भवन में पाँचस्वर्ष रहकर इन्द्र से दिव्यास्त्र प्राप्त करके उनकी आज्ञा पाकर भाइयों से मिलने गन्धमादन आये।

१०. निवातकवचयुद्धपर्व

इस पर्व में (१६५ - १७५) ११ अध्याय तथा ४११ श्लोक हैं। इन्द्र के दिव्य रथ पर बैठकर मातलि के साथ अर्जुन गन्धमादन पर्वत पर आ पहुँचा। अर्नुन के समागम से सब पाण्डवों को बडा हर्ष हुआ। भाइयों से मिलकर अर्जुन भी सन्तुष्ट हुआ। मातलि ने पाण्डवों का अभिवादन किया और उन्हें कर्तव्य की शिक्षा देकर इन्द्रलोक चले गये। इन्द्र भी पाण्डवों के पास आया और युधिष्ठिर के पास अर्जुन की प्रशंसा करके सानन्द स्वर्गलोक चले गये। अर्जुन ने अपने अनुभवों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। उसने निवातकवचराक्षसों को युद्ध में कैसे मारा इसका विवरण दिया। युधिष्ठिर ने दिव्यास्त्र दिखाने हेतु अर्जुन को आज्ञा दी। जब उसने उन्हें दिखाने का आयोजन किया तब नारद ने उसे रोक दिया और कहा कि दिव्यास्त्रों का अनुचितरूप में प्रयोग करने पर महान दोष होगा। सब पाण्डव द्रौपदी के साथ खुशी से उसी वन में रहने लगे।

११. आजगरपर्व

इसमें (१७६ - १८१) ६ अध्याय तथा २२२ श्लोक हैं। अर्जुन के साथ पाण्डव बडे सुख से गन्धमादन पर चार वर्ष तक रहे। पहले के छः वर्ष तथा वहाँ के चार वर्ष इस प्रकार सब मिलाकर पाण्डवों के वनवास के दस वर्ष आनन्दपूर्वक बीत गये। एक दिन भीमसेन ने युधिष्ठिर से कहा कि हे राजन्! हमारे वनवास का ग्यारहवाँ वर्ष चल रहा है। उस अधम को धोखा देकर हम अपने अज्ञातवास का समय भी सुखपूर्वक बिता लेंगे। उसके पूरे होने के बाद दुर्योधन की जड उखाड देंगे। इसलिये हे राजन! शत्रुओं को मारने तथा दण्ड देने का निश्चय कीजिए। युधिष्ठिर ने सब का अभिप्राय जान कर गन्धमादन को प्रणाम करके वहाँ से आगे बढकर द्वैतवन प्रवेश किया। उस भयङ्कर अरण्य में निर्भय घूमनेवाला भीमसेन ने महाकाय अजगर को देखा।
उस सर्प ने उसके समीप पहुँचकर उसके दोनों बाहों को बलपूर्वक पकड लिया। उस सर्प को पराजित करने में भीमसेन असफल हुए। उसने भीमसेन से अपने पूर्ववृत्तान्त को सुनाया। राजर्षि नहुष अगस्त्य के शाप से अजगर बन गया था। सर्प ने कहा कि मैं तुम्हें अपना आहार बनाऊँगा। युधिष्ठिर ने महर्षि धौम्य के साथ भीमसेन की खोज में चले। उसने भीमसेन के पास पहुँचकर नहुष के प्रश्नों का उत्तर दिया। उचित उत्तर पाकर सन्तुष्ट सर्पधारी नहुष ने भीमसेन को छोड दिया और शाप से मुक्त होकर स्वर्गलोक को चला गया। भीम और धौम्य के साथ युधिष्ठिर आश्रम लौट आनन्दपूर्वक रहने लगे।

१२. मार्कण्डेयसमास्यापर्व

इस पर्व में (१८२-२३२) ५१ अध्याय तथा २०९५ श्लोक हैं। पाण्डव द्वैतवन से फिर काम्यकवन चले गये। सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण पाण्डवों को देखने वहाँ आये। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को आश्वासन दिया कि हे युधिष्ठिर! अचिरकाल में ही आपके सारे मनोरथ पूर्ण होंगे। वनवासविषयक प्रतिज्ञा पूरी हो जाय तो कौरवों को दण्ड देने हम तैयार हैं। धर्मराज ने कहा कि केशव! अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार बारह वर्षों का समय निर्जन वनों में घूमकर बिता दिया। अज्ञातास की अवधि पूर्ण होने पर हम सब आप की आज्ञा के अधीन हो जायेंगे। उस समय मार्कण्डेय महर्षि वहाँ पधारे। भगवान् श्रीकृष्ण तथा समस्त पाण्डवों ने उनका पूजन किया। देवर्षि नारद भी उनसे मिलने वहाँ आये। श्रीकृष्ण ने मार्कण्डेय से प्राचीनकाल की पुण्य कथाएँ सुनाने की प्रार्थना की। युधिष्ठिर ने कहने के लिए उद्यत मार्कण्डेय से पूछा कि जब जीव अपने शरीर का त्याग करके परलोक चला जाता है तब शुभ और अशुभ कर्म उसको कैसे प्राप्त होते हैं? मृत्यु हो जाने पर उसके कर्म कहाँ रहते हैं? प्रश्न के उत्तर के रूप में मार्कण्डेय महर्षि ने कहा कि सर्वप्रथम प्रजापति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। उन्होंने जीवों के लिए निर्मल तथा विशुद्ध शरीर बनाया। साथ ही धर्मशास्त्रों को प्रकट किया। वे सभी मनुष्य ब्रह्मस्वरूप, पुण्यात्मा एवं चिरजीवी थे। वे अपनी इच्छा होने पर ही मरते और इच्छा के अनुसार ही जीवित रहते थे। वे सभी धर्मों को प्रत्यक्ष जाननेवाले, जितेन्द्रिय तथा ईर्ष्या से रहित थे। उनकी आयु हजारों वर्षों की होती थी। तदनन्तर मनुष्य काम और क्रोध के वशीभूत होकर छल कपट तथा दम्भ से जीविका चलाने लगे। अपने अशुभ पाप कर्मों के फल स्वरूप पशु पक्षी आदि की योनियों में तथा नरक में गिरने लगे। उनके शरीर में अशुभ कर्मों के चिह्न प्रकट होने लगे। पापियों की आयु उनके कर्मानुसार बहुत कम हो गयी। मृत्यु के पश्चात् जीव की गति उनके अपने अपने कर्मों के अनुसार ही होती है। ईश्वर से किये गये पूर्वशरीर के द्वारा शुभ और अशुभ कर्मों की बडी राशि सञ्चित करता है। आयु पूरी होने पर स्थूलशरीर का त्याग करके उसी क्षण दूसरी योनि में प्रविष्ट होता है। वहाँ दूसरे स्थूल शरीर में उसके पूर्व जन्म के कर्म छाया की भाँति उसके साथ रहता है। इसलिये जीव सुख या दुःख भोगने योग्य होकर जन्म लेता है। कर्मफल निवारण करना साध्य नहीं है। महात्मा एवं ऋषि इस कर्मभूमि में आकर फिर देवलोक चले जाते हैं। जो धर्म पूर्वक अर्थ और काम का संपादन करता है वही इह और परलोक में सुख पाता है। हे धर्मराज! चिन्ता मत करो। यह क्लेश तुम्हारे भावी सुख का सूचक है। इस सन्दर्भ में मार्कण्डेय
ने अनेक कथाओं को सुनाया। वैवस्वत मनु का चरित्र तथा मत्स्यावतार की कथा का भी प्रतिपादन किया।

पुराणे संघटनों को याद दिलाते मार्कण्डेय ने कहा कि वृष्णिकुलभूषण

श्रीकृष्ण ही पुराण पुरुष श्रीहरि हैं, जो पहले बालरूप में दिखाई देते थे। युधिष्ठिर के पूछने पर मार्कण्डेय ने कल्कि अवतार का वर्णन किया। मार्कण्डेय के धर्मोपदेशों से श्रीकृष्णसहित सभी पाण्डव प्रसन्न हुए। कौशिक ब्राह्मण के पूछने पर प्राणवायु की स्थिति के बारे में व्याधने जो कहा वह सब मार्कण्डेय ने सुनाया।

१३) द्रौपदीसत्यभामासंवादपर्व

इसमें (२३३-२३५) तीन अध्याय ९१ श्लोक हैं। जब पाण्डव और ब्राह्मणलोग परस्पर धर्मचर्चा कर रहे थे एवं द्रौपदी और सत्यभामा भी एक ओर सुखपूर्वक बैठकर हास्यविनोद करने लगीं। सत्यभामा ने द्रौपदी से पाण्डव का सदा उसके अधीन रहने का कारण पूछ लिया। उसने द्रौपदी से कहा कि हे कृष्णे! सौभाग्य की वृद्धि करनेवाला व्रत आदि जो कुछ हो उसे मुझे बताओ, जिससे श्रीकृष्ण मेरे अधीन रहें। यह सुनकर द्रौपदी ने कहा कि सत्ये! तुम मुझसे जिसके विषय में पूछ रही हो वह साध्वी स्त्रियों का नहीं। दुराचारिणी स्त्रियों से संबान्धित है। स्वामी के विषय में सन्देह करना तुम्हारी जैसी साध्वी स्त्री के लिए उचित नहीं, मैं पाण्डवों के साथ जैसा व्यवहार करती हूँ, वह सब सुनाती हूँ। काम क्रोध तथा अहंकार को छोडकर सदा सावधानी के साथ पाण्डवों की सेवा करती हूँ। पतियों के अभ्रिप्राय के अनुसार मैं व्यवहार करती हूँ। उनके प्रिय और हितसाधन में ही संलग्न रहती हूँ। द्रौपदी के धर्मयुक्त बातें सुनकर सत्यभामा लज्जित होकर उससे क्षमा माँगी।

द्रौपदी ने उससे कहा कि पति का अनन्यभाव से सेवा करना ही उसको अनुकूल बनाने का एक मात्र उपाय है। वार्तालाप के अनन्तर श्रीकृष्ण पाण्डवों से बिदा लेकर सत्यभामा के साथ द्वारका चले गये।

१४) घोषयात्रापर्व

इस पर्व में (२३६-२५७) २२ अध्याय तथा ५८७ श्लोक हैं। पाण्डव द्वैतवन में एक कुटीर बनाकर वहाँ रहते थे। एक दिन कुशल ब्राह्मण पाण्डवों के पास आया और उनसे मिलकर फिर देश भ्रमण करते करते धृतराष्ट्र के पास गया। महाराज के पूछने पर उसने पाण्डवों के कष्ट भोगने का समाचार सुनाया। उसे सुनकर धृतराष्ट्र भी दुःखी हुआ और उनके बलपराक्रम तथा अर्जुन के दिव्यास्त्र का प्रस्ताव किया। एकान्त में कही हुई धृतराष्ट्र की बातें सुनकर शकुनि ने दुर्योधन और कर्ण को यह वृत्तान्त सुनाया। इसे सुनकर दुर्योधन चिन्तित हो गया। अवसर देखकर शकुनि और कर्ण दोनों ने दुर्योधन की प्रशंसा करते उसे पाण्डवों के पास चलने को उत्तेजित किया। उन्होंने कहा कि महाराज! राजलक्ष्मी से सुशोभित होकर तुम वहाँ चलो। तुम्हारे ऐश्वर्य को देखकर पाण्डव अत्यन्त दुःखी होंगे। तुम्हारी रानियाँ भी सुन्दर साडियाँ पहनकर वहाँ चलें। वल्कल एवं मृगचर्म पहनके दुःख में डूबी हुई द्रौपदी भी उन्हें देखकर
दुःखीहोगी। उनकी बातें दुर्योधन को अच्छी लगीं। उसने कर्ण से कहा कि द्वैतवन

में जाने को पिताजी से अनुमति पाने के लिए शकुनि तथा दुश्शासन के साथ सलाह करके अच्छा सा उपाय ढूँढ निकालो। कल प्रातः होते ही मैं महाराज के पास जाऊँगा। ऐसा कहकर दुर्योधन विश्रामगृह चला गया। सबेरे कर्ण दुर्योधन के पास आया और उससे कहा कि हे नरेश्वर! गोओं के रहने का सभी स्थान इस समय द्वैतवन में ही हैं। इसलिये घोषयात्रा (उन स्थानों को देखना) के बहाने हम वहाँ निस्सन्देह चल सकेंगे। घोषयात्रा आपके लिए सदा उचित ही है। शकुनि ने भी उसका समर्थन किया। यही निश्चय करके दुर्योधन, कर्ण और शकुनि तीनों महाराज से मिले।

घोषयात्रा के प्रस्ताव को पहले धृतराष्ट्र ने तिरस्कृत किया लेकिन शकुनि के समझाने से इच्छा न होते हुए भी मन्त्रियों सहित दुर्योधन को वहाँ जाने की अनुमति दी। परिवार के साथ दुर्योधन द्वैतवन के लिए प्रस्थित हुए।

दुर्योधन सेना सहित द्वैतवन में घोषो (गोशालाओं) के पास पहुँचा और वहाँ रहने के लिए डेरे डाल दिये। तदनन्तर दुर्योधन ने अपने सेवकों को द्वैतवन के सरोवर के निकट क्रीडामण्डप तैयार करने का आदेश दिया। लेकिन उस सरोवर को गन्धर्वराज ने घेर रखा है। वह जानकर दुर्योधन ने वहाँ से गन्धर्वों को भगाने के लिये सैनिकों को आदेश दिया। पश्चात् कौरव और गन्धर्वों के बीच युद्ध हुआ। उनके पराक्रम के सामने कौरव सेना टिक न सकी। कर्ण भी पराजित हुआ। गन्धर्वराज चित्रसेन ने दुर्योधन को बाँध लिया। सैनिकों ने पाण्डवों की शरण ली। युधिष्ठिर ने कौरवों को छुडाने के लिए भीमसेन को आदेश दिया। युद्ध में पाण्डवों ने गन्धर्वों का पराजित कर दुर्योधन को मुक्त कराया। दुर्योधन ने कर्ण को अपनी पराजय का वृत्तान्त सुनाया और कहा कि युधिष्ठिर ने हमें छुडाने के लिए पाण्डवों को आज्ञा दी। युद्ध के सन्दर्भ में चित्रसेन और अर्जुन एक दूसरे से मिले और परस्पर कुशल समाचार पूछने लगे। अर्जुन ने चित्रसेन से कौरवों को मुक्त करने को कहा। यह सब कुछ अवमान समझकर दुर्योधन ने आमरण उपवास करने, तथा दुश्शासन को राज्याभिषेक करने का अपना अभिप्राय प्रकट किया। उसकी की बात सुनकर दुश्शासन उद्विग्न हुआ और। दुश्शासन कर्ण और शकुनि के समझाने पर भी दुर्योधन नहीं माना और आमरण उपवास का निश्चय करके उपवास के लिए बैठ लिया।

पूर्वकाल में देवताओं से पराजित पातालवासी दैत्यों ने दुर्योधन को अपने पास बुलाने के लिए यज्ञ का अनुष्ठान किया। यज्ञकुण्ड से उस समय एक अत्यन्त अद्भुत कृत्या प्रकट हुई। उनकी आज्ञा से वह दुर्योधन के पास पहुँची और उसे रसातल ले आयी। उन्होंने अनशनव्रत के विराम के लिए दुर्योधन को समझाया। फिर कृत्या ने उसे अपने पूर्वतन स्थान पर पहुँचा दिया। दुर्योधन ने यह सब कुछ स्वप्न समझा और उसे पाण्डवों को जीत लेने का विश्वास हुआ। सुबह होने पर फिर कर्ण वहाँ आ पहुँचा और उसका अनुनया किया। दैत्यों का वचन याद करके दुर्योधन ने पाण्डवों से युद्ध करने का निश्चय किया और फिर सब लोग हस्तिनापुर चले गये।

पाण्डवों के द्वारा छुटकारा पाकर दुर्योधन हस्तिनापुर पहुँचा। भीष्म ने दुर्योधन के व्यवहार की निन्दा करते हुए पाण्डवों के साथ सन्धि करने का उसे उपदेश दिया। उनकी बात पर दुर्योधन हँस पडा और शकुनि के साथ अन्यत्र चला गया। दुर्योधन की अनुमति लेकर कर्ण
दिग्विजययात्रा करके सारी पृथ्वी को जीतकर धनसम्पत्ति हस्तिनापुर पहुँचा दिया। कर्ण और पुरोहित की सुचना के अनुसार दुर्योधन ने वैष्णवयज्ञ किया। उसने पाण्डवों को भी निमन्त्रण भेजा। लेकिन वनवासरूप प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए पाण्डव वहाँ से नहीं निकले। कर्ण ने अर्जुन के वध करने की प्रतिज्ञा की। गुप्तचरों के द्वारा यह सुनकर युधिष्ठिर उद्विग्न हुए।

१५) मृगस्वप्नोद्भवपर्व

इसमें (२५८) एक अध्याय तथा १७ श्लोक हैं। एक रात जब युधिष्ठिर सो रहे थे तब मरने से बचे हुए द्वैतवन के हिंस्र पशुओं ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिया और कहा कि आप लोगों के द्वारा मारने से हमारी संख्या कम हो गयी। हमारी रक्षा के लिए अपना निवासस्थान बदल लीजिए। नींद में धर्मराज ने उन्हें आश्वासन दिया। सबेरे होने पर धर्मराज ने दयाभाव से द्रवित हो गये और परिवार के साथ द्वैतवन से काम्यकवन चले गये।

१६) व्रीहिद्रौणिकपर्व

इस पर्व में (२५९-२६१) तीन अध्याय तथा १३० श्लोक हैं। पाण्डवों के वनवास करते ग्यारह वर्ष बीत गये। युधिष्ठिर सदा यही सोचकर दुःखी होता था कि मेरे ही कारण अपना परिवार कष्ट भोग रहा है। एक दिन महर्षि व्यास पाण्डवों को देखने वहाँ आये। युधिष्ठिर के पूछने पर उन्होंने कहा कि दान ही सर्वश्रेष्ठ कर्म है। दान से बढकर दुष्कर कार्य इस पृथ्वी पर कोई नहीं है। यदि पवित्र मन से उत्तम समय पर सत्पात्र को थोडा सा दान दिया गया हो तो वह परलोक में अनन्तफल देनेवाला माना गया है। मुद्गल ऋषि ने एक द्रोण धन का दान करके महान् फल प्राप्त किया था। इस संदर्भ में व्यास महर्षि ने मुद्गलोपाख्यान सुनाया। तेरह वर्ष के बाद अपने पितृपैतामह के राज्य प्राप्त कर लेंगे। ऐसा कहकर व्यास तपस्या के लिए अपने आश्रम चले गये।

१७) द्रौपदीहरणपर्व

इस पर्व में (२६२-२७१) दस अध्याय तथा २८८ श्लोक हैं। दुर्योधन ने सुना कि पाण्डव नगर में जैसे वन में भी दान धर्मों से जीवन बिताते हैं। इसलिये उसने कर्ण और दुश्शासन के साथ पाण्डवों को संकट में डालने का उपाय सोचा। उसी समय दुर्वासमहर्षि अपने दस हजार शिष्यों के साथ वहाँ आ पहुँचे। दुर्योधन ने उन्हें प्रसन्न कर लिया। संतुष्ट महर्षि ने उससे वर माँगने को कहा। तब दुर्योधन ने उनसे वर माँगा कि जिस प्रकार आप मेरे अतिथि हुए उसी तरह शिष्यों के

साथ आप उनके भी अतिथि बन जाइए। उसने दुर्बुद्धि से पुनः कहा कि हे मुने! द्रौपदी समस्त ब्राह्मणों तथा अपने पतियों को भोजन कराकर स्वंय भी भोजन करने के पश्चात् सुखपूर्वक विश्राम करते हैं उस समय में जाइए। महर्षि ने उसका वचन मान लिया।

दुर्योधन की इच्छा के अनुसार, द्रौपदी सहित पाण्डवों के भोजन की समाप्ति के बाद दुर्वास अपने दस हजार शिष्यों सहित युधिष्ठिर के पास गये। अतिथिपूजा के बाद युधिष्ठिर ने उन से कहा कि हे भगवन् नित्य कर्म पूरा करके शीघ्र पधारिए। मुनि शिष्यों सहित स्नान करने
चले गये। द्रौपदी को अन्न के बारे में चिन्ता हुई। उसने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की। तुरन्त श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचे। उसने द्रौपदी से कहा कि मुझे भूख लग रही है। जल्दी भोजन बनाओ। द्रौपदी ने विनती की कि हे भगवन्! जब तक मैं भोजन न कर लूँ तब तक ही सूर्य से दिये गये अक्षयपात्र से भोजन मिलता। लेकिन आज तो मैं भोजन कर चुकी हूँ। श्रीकृष्ण ने उससे अक्षयपात्र दिखाने को कहा। उस पात्र के गले में (कण्ठप्रदेश में) लगा हुआ अन्न कण लेकर श्रीकृष्ण ने खाया और कहा कि सम्पूर्ण विश्व के आत्मा श्री हरि तृप्त है। इतना कहकर श्रीकृष्ण सहदेव से मुनियों को भोजन के लिए बुला लाने को कहा। लेकिन उधर सब मुनि गण अन्न रस से तृप्ति का अनुभव करते हैं। दुर्वास महार्षी के वचन के अनुसार सब शिष्य वहाँ से भाग चले। सहदेव ने युधिष्ठिर को सब कुछ निवेदन किया। श्रीकृष्ण सारा वृत्तान्त सुनाकर उनकी आज्ञा से द्वारका चले गये। दुर्योधन का कुतन्त्र इस तरह व्यर्थ हो गया।

एक बार सिन्धु देश के राजा जयद्रथ विवाह की इच्छ से शालवदेश की ओर जाते काम्यकवन के आश्रम में अकेले द्रौपदी को देखकर मोहित हो गया और उसका पता लगाने के लिए कोटिकास्य को भेजा। लेकिन द्रौपदी उसे अतिथि समझकर आतिथ्य की व्यवस्था में लग गयी। कोटिकाश्य ने जयद्रथ को द्रौपदी का परिचय दिया। राजा जयद्रथ ने वहाँ जाकर द्रौपदी से अपने मन की बात कही। उसकी बात सुनकर द्रौपदी उस स्थान से दूर हट गयी और उसे धमकी दी। उसने द्रौपदी को बलात्कार पूर्वक खींचकर रथ में बिठाकार ले चला। आश्राम को लौटे हुए पाण्डव द्रौपदी का अपहरण वृत्तान्त सुनकर जयद्रथ का पीछा किया।

१८) जयद्रथविमोक्षणपर्व

इसमें (२७२) एक अध्याय तथा ८५ श्लोक हैं। भीम ने जयद्रथ को बन्दी बनाकर युधिष्ठिर के सामने उपस्थित किया। उसकी प्रार्थना पर युद्धिष्ठिर ने उसे मुक्त किया। लज्जित जयद्रथ गङ्गद्वार जाकर परमेश्वर की शरण ले तपस्या की। भगवान् ने उसे वर हेतु अनुग्रह किया। उसने पाँच पाण्डवों को युद्ध में जीतने का वर माँगा। लेकिन परमेश्वर ने यह असाध्य कहकर यह वर दिया कि एक दिन के युद्ध में अर्जुन को छोडकर अन्य चार पाण्डवों को आगे बढने से रोक सकते हो।

यह कहकर परमेश्वर अन्तर्धान हो गये। मन्दबुद्धि जयद्रथ भी अपने घर चला गया।

१९) रामोपाख्यानपर्व

इस पर्व में (२७३-२९२) २० अध्याय तथा ७५६ श्लोक हैं। जयद्रथ को जीत कर द्रौपदी को छुडाकर लाने के पश्चात् अपनी दुरवस्था से दुःखित धर्मराज ने मुनिगण के साथ बैठे मार्कण्डेय ऋषि से पूछा कि भगवन्! आप त्रिकालज्ञ हैं। इसलिये आप कहिए कि मेरा जैसा भाग्यहीन इस संसांर में और कोई है। यह सुनकर मार्कण्डेय ने श्रीरामचन्द्र का वृत्तान्त सुनाया। श्रीराम आदि का जन्म, रावण आदि की उत्पत्ति, श्रीराम के राज्याभिषेकसन्नाह, रामवनगमन, मारीच का वध, सीतापहरण, रामरावणयुद्ध, रावणसंहार, श्रीराम का राज्याभिषेक आदि विषयों का वर्णन कर मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर से कहा कि श्रीराम के कष्ट के सामने तुम्हारा कष्ट
अणुमात्र भी नहीं है, ऐसा कहकर उसने युधिष्ठिर को आश्वासन दिया।

२०) पतिव्रतामाहात्म्यपर्व

इसमें (२९३-२९९) सात अध्याय तथा ३०५ श्लोक हैं। युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय से पूछा कि हे भगवन्! आपने द्रौपदी जैसी सौभाग्यवती तथा पतिव्रता नारी को देखा है या सुना है? प्रश्न के उत्तर में मार्कण्डेय महर्षि ने सावित्री उपाख्यान सुनाया। राजा अश्वपति संतान के लिए कठोर नियमों का पालन करता था। प्रसन्न सावित्रीदेवी के वरदान से कालक्रम में उनके यहाँ कन्या का जन्म हुई। उसका नाम सावित्री रखा। वह यौवनवती हुई। पति के खोज में तीर्थयात्रा करने की पिता की आज्ञा पाकर सत्यवती सभी देशों में घूमकर वापस आयी। उसने पिता से विनति की कि शाल्वदेश के द्युमत्सेन पुत्र सत्यवान् को मैं मन में पति के रूप में वरण कर चुकी हूँ। यह सुनकर वहाँ उपस्थित नारद ने कहा कि बिना जाने सावित्री अनिष्ट किया है। आज से लेकर एक वर्ष पूर्ण होने तक सत्यवान की आयु पूर्ण हो जायगी। पिता ने दूसरे को पति के रूप में चुनने को कहा। लेकिन सावित्री ने इनकार किया और कहा कि कन्या एक ही बार दी जाती है। मैं उन्हें पति के रूप में नी हूँ। नारद के कहने पर अश्वपति ने अपनी पुत्री की इच्छा के अनुसार उसका विवाह सत्यवान् से कर लिया। सावित्री अपनी सेवाओं से सास, ससुर आदि सबको संतुष्ट करती थी।

बहुत दिन बीत जाने पर वह समय आ पहुँचा, जिस दिन सत्यवान् की मृत्यु होनेवाली थी। सावित्री को यह निश्चय हो गया कि उसके पति आज से चौथे दिने मरनेवाला है। इसलिये उसने तीन रात का व्रत धारण किया और दिनरात खडी ही रही। कल ही पतिदेव की मृत्यु होनेवाली है, यह सोचकर सावित्री बडी दुःखी हुई। सत्यवान् कन्धे पर कुल्हाडी रखकर काष्ठ लाने वन की ओर निकला। सास और ससुर की आज्ञा पाकर वह भी पति के साथ वन चली।

सत्यवान् ने कहा कि लकडी काटने के श्रम से सिर में दर्द हो रहा है। इसलिये सोना चाहता हूँ। सावित्री पति का सिर गोद में रखकर बैठ गयी। इतने में वहाँ यमधर्मराज प्रत्यक्ष हुआ और कहा कि तेरे पति की आयु समाप्त हो गयी है। उसे ले जाऊँगा। उन दोनों के बीच वाद विवाद हुआ। प्रसन्न होकर यमधर्मराज ने सत्यवान् के जीवन के अतिरिक्त वर माँगने की प्रक्रिया में चौथा वर माँगने को कहा। उसने सौ पुत्रों को वर के रूप में माँगा। यमधर्मराज ने तथास्तु कह दिया। सावित्री ने कहा कि दाम्पत्य संयोग के बिना वर की सफलता नहीं होती। इसलिये मेरे पति जीवित हो जायँ। सावित्री के वचनों पर यमधर्मराज प्रसन्न हुए। उनके अनुग्रह से सत्यवान् जीवित हुआ। शाल्वदेश के प्रजाओं के अनुरोध से द्युमत्सेन राज्याभिषिक्त हुआ और सत्यवान् को युवराज के पद पर अभिषिक्त किया। इस प्रकार मार्कण्डेय ने सावित्री उपाख्यान सुनाकर धर्मराज के प्रश्न का समाधान किया।

२१) कुण्डलाहरणपर्व

इस पर्व में (३००-३१०) ग्यारह अध्याय तथा ३०७ श्लोक हैं। पाण्डवों के वनवास का बारह वर्ष बीत गये। तेरहवाँ वर्ष आरम्भ हुआ। पाण्डवपक्षपाती इन्द्र ने कर्ण से कवच कुण्डल
माँगने को तैयार हुआ। इन्द्र का मनोभाव जानकर सूर्य ने स्वप्न में कर्ण को दर्शन देकर इन्द्र को कवच कुण्डल न देने का उसे सचेत किया। लेकिन कर्ण ने उनका वचन नहीं माना। बल्कि ब्राह्मणवेषधारी इन्द्र को भिक्षा के रूप में कवचकुण्डल देकर उत्तमगति प्राप्त करने का निश्चय किया। फिर स्वप्न के अन्त में कर्ण जाग उठा और स्वप्न का चिन्तन करते, इन्द्र से शक्ति लेकर ही कवच कुण्डल देने का निश्चय किया, ब्राह्मणवेषधारी इन्द्र से कर्ण ने अपने कवच कुण्डल लेकर उसकी अमोघशक्ति प्रदान करने को कहा। तब इन्द्र ने दो घडी तक सोचकर कर्ण से कहा कि कवचकुण्डल देकर मेरी यह शक्ति ग्रहण कर लो। वह शक्ति तुम्हारे हाथ में जाकर किसी एक प्रतापी शत्रु को मारकर पुनः मेरे पास आ जायगी। इस प्रकार कहकर इन्द्र द्वारा कवचकुण्डल लेकर बदले में अपनी शक्ति प्रादन की।

२२) आरणेयपर्व

इस पर्व में (३११-३१५) पाँच अध्याय तथा २६६ श्लोक हैं। जयद्रथ के द्वारा द्रौपदी का अपहरण होने पर पाण्डवों ने युद्ध में उस को हराकर फिर उसे पा लिया। बाद में वे काम्यकवन छोडकर फिर द्वैतवन को चले गये। एक दिन एक तपस्वी ब्राह्मण के अरणी सहित मन्थन काष्ठ अपना शरीर रगडते समय एक मृग के सींग में अटक गये। ब्राह्मण की प्रार्थना के अनुसार पाण्डव उनके पीछे दौडे। निष्फल होकर वे एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। उन्हें प्यास लगी। युधिष्ठिर के आदेश पाकर पानी लाने के लिए गये नकुल एक सरोवर के तट पर यक्ष के प्रश्नों को उत्तर दिये बिना उसे अवहेलना करके पानी पीकर अचेत हो गिर पडा।

उस की खोज में वहाँ जाकर सहदेव, अर्जुन और भीम भी सरोवर का पानी पीकर मूर्छित होकर गिर पडे। आखिर युधिष्ठिर ने यक्षप्रश्नों के सही उत्तर दिया। संतुष्ट यक्ष धर्मराज के चार भाइयों को जीवित होने का वर दिया।

तेरहवें वर्ष में अज्ञातवास करने के लिए पाण्डव उनके प्रति स्नेह रखनेवाले तेजस्वी ब्राह्मणों से आज्ञा माँगी तथा द्रौपदी सहित पाँचों पाण्डव धौम्य के साथ वहाँ से निकल पडे।

।। वनपर्व कथासार समाप्त ।।